प्राचीन भारत में सूर्योपासना

सारांश

भारतीय वांग्मय में भगवान अंशुमाली का स्थान अत्यन्त श्रृद्धास्पद एवं महत्वपूर्ण रहा है। उन्हें समस्त देवताओं की आत्मा, ब्रह्माण्ड का स्वामी, कर्मों का साक्षी एवं परम–त्व ब्रह्म का पर्याय कहा गया है। सृष्टि–निर्माता, प्रकाश तथा उष्णता के कारक एवं वनस्पतियों के उत्पादक होने के कारण उन्होंने मानव का ध्यान अपनी ओर सृष्टि के आरम्भ से ही आकृष्ट किया था। सूर्य का देवत्व प्रत्येक रूप में प्रमाणित है। इसी कारण भारत सहित संसार के प्रायः सभी देशों में आदिकाल से ही सूर्योपासना का प्रचलन रहा है। प्रागैतिहासिक युग से लेकर आद्य ऐतिहासिक और ऐतिहासिक युग तक निरन्तर सूर्योपासना का प्रचलन समाज में उत्तरोत्तर प्रगतिशील रहा। प्रारम्भ में सूर्य पूजा प्रतीकों के रूप में शुरू हुई जो आगे चलकर विभिन्न राजवंशों के प्रतिभाशाली शासकों के संरक्षण में मूर्ति पूजा से लेकर मन्दिर निर्माण तक पहुँच गयी। प्राचीन भारत में लगभग सभी महत्वपूर्ण राजवंशों ने इसे अपना संरक्षण दिया। प्रस्तुत लेख में, प्रागैतिहासिक युग से लेकर ऐतिहासिक युग तक सूर्योपासना का किस–किस रूप में विकास हुआ और किस किस राजवंश में इसे अपना संरक्षण प्रदान कर मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण करवाकर, जनमानस में भगवान सूर्य को महत्वपूर्ण उपास्य का दर्जा प्रदान कर सौर पूजा को सौर सम्प्रदाय तक प्रतिष्ठित कर दिया, इसी का विस्तृत वर्णन दृष्टव्य है।

धर्मेन्द्र कुमार तिवारी
प्रवक्ता,
प्राचीन इतिहास,
राजीव गाँधी महाविद्यालय,
जगदीशपुर,अमेठी

मुख्य शब्द : सूर्योपासना, सूर्य, हिन्दू समाज।

प्रस्तावना

भारत में प्रागैतिहासिक युग से ही सूर्योपासना प्रचलित रही। यहाँ की अत्यन्त प्राचीन मानी जाने वाली आहत मुद्राओं पर अंकित चक्र अथवा षडाल चक्र (छः अरों वाला मण्डल) को सूर्य का ही चिन्ह माना गया है। सिंहनपुर (कश्मीर) के निकट माण्डा नदी के पूर्व में पहाड़ी से प्राप्त बलुए पत्थर की चट्टान पर उगते हुए सूर्य का एक चित्र प्राप्त हुआ है। यह चित्र सूर्य के आकार में किरणों सहित फैला हुआ है। प्रो0 पंचानन मित्र के अनुसार यह उगते हुए सूर्य का चित्र है। भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व सैंधव सभ्यता से भी सूर्योपासना के चिन्ह मिलते हैं।[1] सिन्धु घाटी के उत्खनन में स्वस्तिक और यूनानी सलीब (क्रास) के अंकन प्रचुर संख्या में मिले हैं। विद्वानों ने इसे निश्चित रूप से सूर्य का ही प्रतीक माना है। चक्र की तरह के कुछ आकार भी सूर्य के प्रतीक हो सकते हैं। यहाँ की एक मुद्रा पर एकश्रृंगी पशु के आगे सूर्य जैसा बना है, जिससे बहुत सी किरणें फूट रही हैं। मैके महोदय के अनुसार इस मुद्रा के साक्ष्य से एकश्रृंगी पशु का सूर्य से सम्बन्ध ज्ञात होता है।[2] हड़प्पा मोहेंजोदड़ो और कुछ दूसरे सैंधव संस्कृति के नये क्षेत्रों जैसे लोथल, रंगपुर, रोपड़ और कालीबंगा इत्यादि से खुदाई में प्राप्त प्रतीकों/मुद्राओं पर उत्कीर्ण चिन्हों और मिट्टी के बर्तनों में जो आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं उनसे पता चलता है कि सिंधु सभ्यता के लोग भी सूर्य की पूजा करते थे।[3] सैंधव युग के शव भांडों पर बने हुए चित्रों से प्रतीत होता है कि किसी न किसी रूप में बैल, मोर, अश्वत्थ और कमल सूर्य लोक से सम्बन्ध रखते थे। मोर को कुछ जातियों के लोग ''सौर पक्षी'' भी कहते हैं और इसके प्रति पूज्य भावना रखते हैं।[4]

वैदिक साहित्य में सूर्योपासना से सम्बन्धित प्रचुर विवरण है जिनमें उन्हें सवित्, मित्र, वरूण, पूषन् तथा विष्णु आदि रूपों में लोक कल्याणकारी कहा गया है। प्रकृति के देवता के रूप में सूर्य की उपासना से सम्बन्धित विवरण ऋग्वेद में मिलते हैं।

''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'' (ऋ0,1.115.1) अर्थात ''सूर्य चराचर की आत्मा हैं।'' ऋग्वेद में सूर्य की महिमा के 14 सूक्त हैं। सौर सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है और भारतीय दैनन्दिन उपासना में सूर्य पूजा अनिवार्य मानी गयी है। वैदिक काल में तेजपुंज के रूप में अन्धकार का विनाश करने वाले, सबको देखने

वाले, मनुष्य के समस्त कर्मों के दृष्टा, पाप से मुक्ति दिलाने वाले, काल चक्र का प्रवर्तन करने वाले सूर्य का कुछ सीमा तक मानवीकरण भी हो गया था। यह कहा गया है कि वे एक, सात अथवा अनेक घोड़ों के रथ पर आरूढ़ होकर आकाश में भ्रमण करते हैं।[5] वेदों के अगणित देवता हिन्दू धर्म में विलीन होकर एक देव बन गये जिसे सामान्य रूप में 'सूर्य' कहा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य के कुछ उपासकों ने उसे सर्वदेवों से श्रेष्ठ मान लिया था।[6] ऋग्वेद की सृष्टि नियम मीमांसात्मक कल्पनाओं में सूर्य की उपादन का एक प्रमुख माध्यम माना जाता था, इसीलिए सूर्य को सभी स्थावर–जंगम की आत्मा कहा गया है। सूर्य ही अंतरिक्ष के शून्य स्थान को मापते हैं और उस स्थान पर प्रकाशमान होते हैं जहाँ सूर्योदय होता है। इसी सूक्त के अन्तिम मंत्र में सूर्य को 'प्रजापति' नाम से पुकारा गया है जो बाद में ब्राह्मण ग्रन्थों के सर्वोच्च देवता का नाम माना गया। ऋग्वेद के एकमात्र प्राचीन स्थल पर जहाँ यह नाम आता है वहाँ प्रजापति केवल सौरदेव 'सवितृ' की ही एक उपाधि है और उसी सूक्त में 'सवितृ' को सभी स्थावर–जंगम पर शासन करने वाला कहा गया है।[7] यास्क ने स्वर्ग लोक में मात्र सूर्य का ही अस्तित्व माना है। ऋग्वेद में 10 सम्पूर्ण सूक्त ऐसे हैं जिनमें अकेले सूर्य की ही प्रख्याति है। ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर सूर्य की कल्पना शून्य में भ्रमण करने वाले पक्षी के रूप में की गयी है। सूर्य के सम्बन्ध में ऋग्वेद में केवल एक ही पुराकथा मिलती है, वह यह कि इन्द्र ने इसको पराभूत किया था और इसके पहिए चुरा लिए थे। इससे झंझावत द्वारा सूर्य के आच्छादित हो जाने का लक्षणात्मक आशय प्रकट होता है।[8] ऋग्वेद में सूर्य का नाम 'विश्वकर्मा' मिलता है। इससे उसकी सृष्टि रचना की योग्यता प्रमाणित होती है।[9] वेदों में सूर्य के विविध रूपों का स्पष्ट वर्णन मिलता हैं। ऋषि लोग अन्धकार भगाने वाले सूर्य के तीन रूपों का वर्णन करते हैं–उत्, उत्+तर्, उत्+तम् ये क्रमशः महात्म्य में बढ़कर हैं। सूर्य द्वारा इस भुवन के भौतिक अन्धकार को दूर करने में समर्थ जयोति को 'उत्', देवों के मध्य देव रूप में निवास करने वाली ज्योति 'उत्तर्' और इन दोनों से बढ़कर सामर्थ्यवान ज्योति 'उत्तम' कहलाती है।[10] उसकी उपासना विभिन्न नामों जैसे सूर्य, सवितृ, पूषन, भग, मित्र, वरूण, विष्णु, अर्यमान, विवस्वत और अंश से की जाती है। उत्तर वैदिक काल में सूर्य आर्यों के देवगणों में एक स्वतंत्र देव हो गये।[11]

पुराणों में सूर्य सम्बन्धी सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। पौराणिक साहित्य से विदित होता है कि उस समय सूर्योपासना अत्यन्त लोकप्रिय थी। पुराणों में सूर्य का देव रूप उभरकर आया है। देव पंचायतन में विष्णु, देवी, गणेश, शिव और सूर्य इन पाँचों को समान स्थान प्राप्त है।[12] मार्कण्डेय पुराण में उल्लिखित है कि केवल भूतों से बना हुआ सूर्य का रूप एक मृत अण्डा है। उसके भीतर जो छिपा हुआ बीज है उसे 'हिरण्य' कहते हैं। वह जब जाग उठता है तो वहीं हिरण्यगर्भ सूर्य 'मार्तण्ड' कहा जाता है।[13] ब्रह्मपुराण में वर्णित है कि सृष्टि काल में सम्पूर्ण जगत सूर्य से ही उत्पन्न होता है और प्रलय काल में उसी अत्यन्त तेजस्वी भास्कर में लीन हो जाता है

सर्वकाले जगत्कृत्सन्मादित्यात् सम्प्रसूयते।
प्रलये च तमभ्येति भास्करं दीप्ततेजसम।।'(ब्र0पु0 30.13)

पौराणिक साहित्य में सूर्योपासना से सम्बन्धित सर्वाधिक सामग्री साम्ब पुराण में उपलब्ध है। यह पुराण सौर सम्प्रदाय का आदि ग्रन्थ प्रतीत होता है क्योंकि इस सम्प्रदाय का उल्लेख करने वाले भविष्य, स्कन्द, ब्रह्म, वराह, अग्नि तथा गरूड़ पुराण में साम्ब पुराण की सामग्री संकलित है। प्राचीन ग्रन्थों में सूर्य से सम्बन्धित मार्तण्ड, आदित्य, भास्कार तथा सूर्य पुराणों के नाम अवश्य मिलते हैं किंतु इन सौर ग्रन्थों में से कोई भी उपलब्ध नहीं है, मात्र साम्ब पुराण ही शेष है।[14] साम्ब पुराण में उल्लिखित है कि पहले सूर्य प्रतिमा नहीं थी अपितु मण्डल–रूप में ही उनकी पूजा होती थी। आकाश में दृश्यमान सूर्य मण्डल की ही भाँति सूर्योपासक लोग मण्डल का निर्माण करते थे

न पुरा प्रतिमा ह्यासीत पूज्यते मण्डले रविः।
यथैतन्मण्डलं व्योम्नि स्थीयते सवितुस्सदा।।
(साम्ब पु0 29.2)

साम्ब पुराण के उक्त उल्लेख की सम्पुष्टि आहत मुद्राओं पर प्राप्त चक्रों से होती है जिसे 'सूर्य चिन्ह' प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः सूर्य का अंकन रश्मियों से युक्त मण्डल के रूप में हुआ है।[15]

सूर्योपासना का स्वतंत्र अस्तित्व कभी खण्डित नहीं हुआ। महाकाव्यों में भी सूर्योपासना का विस्तृत वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण में 'आदित्य हृदय स्तोत्र' का वर्णन है। जिसमें स्वयं भगवान राम सूर्योपासक हैं।[16] महाभारत के एक श्लोक में सूर्य को देवों का देव, देवेश्वर कहा गया है और सूर्य के 108 नाम बताए गये गये हैं जिनकी उपासना मात्र गुणों द्वारा ही नहीं बल्कि आवाहन श्लोकों, मंत्रों, अर्ध्य सहित अन्य विभिन्न प्रकार से की गयी है।[17] महाभारत के अनुशासन पर्व में उल्लेख है कि सरोवर खुदवाने से सूर्यदेव प्रसन्न होते हैं। सम्भवतः यही कारण है कि देश में सहस्त्रों तालाब सूरजकुण्ड के नाम से जाने जाते हैं। इनके किनारे कहीं कहीं सूर्य मन्दिर भी निर्मित हुए जैसे–ग्वालियर का प्राचीन सूर्य मन्दिर छतरपुर जिले में छपरा ग्राम के परेती तालाब के किनारे का सूर्य मन्दिर।

सैन्धव, वैदिक, पौराणिक और महाकाव्यीन युगों के साथ–साथ प्राचीन भारत के समस्त राजवंशों में भी सूर्योपासना के प्रचलन के साक्ष्य मिलते हैं। मौर्यकालीन कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में अन्य देवी–देवताओं के साथ सविता (सूर्य) का उल्लेख मिलता है। अशोक के अभिलेखों में सूर्य पूजा से सम्बन्धित विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। उसके द्वारा खुदवाए गए प्रस्तर स्तम्भों पर मौर्य कलाकारों ने कुछ जानवरों को प्रदर्शित किया है जैसे 'घोड़ा' सारनाथ स्तम्भ पर प्रदर्शित हैं। ब्लाख महोदय ने घोड़े को सूर्य देवता का प्रतीक माना है क्योंकि वहीं पर अन्य तीन हिन्दू देवी–देवताओं इन्द्र, शिव और दुर्गा का प्रदर्शन भी अन्य पशुओं जैसे हाथी, बैल और सिंह द्वारा क्रमशः किया गया है।[18] शुंगवंशीय शासक पुष्यमित्र शुंग के समय में पतंजलि का आविर्भाव हुआ। उन्होंने अपने ग्रन्थ महाभाष्य में लगभग 12 बार सूर्य देवता का उल्लेख किया है।[19]

सातवाहन वंशीय शासक शातकर्णि प्रथम की पत्नी नागनिका के नानाघाट से प्राप्त शिलालेख के प्रारम्भ में अन्य प्रमुख देवों के साथ सूर्यदेव को भी नमन किया गया है।[20] शुंग शासकों के पश्चात् उत्तर और पश्चिमोत्तर भारत के इतिहास में एक लम्बे समय तक विदेशी जैसे इण्डों–ग्रीक, शकों ओर कुषाणों ने शासन किया। उनके समय में भी सूर्य पूजा का भारत में विकास होता रहा है। सम्भवतः इनमें से कुछ शासकों ने सूर्य की आकृति अपने सिक्कों पर भी उत्कीर्ण करवायी थी। हुविष्क और कनिष्क के सिक्कों पर सूर्य (मिथ्र–मिहिर) को मानव आकृति में दिखाया गया है। कनिष्क के सिक्कों पर मिइरों (ईरानी मिथ्र–सूर्य) और हेलियोस (यूनानी सूर्य) का विशेष रूप से उल्लेख हैं।[21] गुप्तकालीन अभिलेखों में अनेक बार सूर्य देवता का आवाह्न किया गया है। विशेषतः कुमारगुप्त प्रथम के समय से सूर्योंपासना को प्रमुखता प्राप्त होने लगी थी। मंदसौर प्रशस्ति में यह उल्लेख मिलता है कि कुमारगुप्त प्रथम के राज्यकाल में दशपुर (पश्चिम मालवा) में निवास करने वाली तन्तुवायों की समिति (पट्टवाय श्रेणी) ने मालव संवत् 493 (436ई0) में अपने शिल्प द्वारा अर्जित धन से एक सूर्य मन्दिर का निर्माण करवाया था'

शिल्पवाप्तैर्द्धन–समुदयैः पट्टवायेरूदारं,
श्रेणी भूतैः भवनमतुलं कारितं दीप्तरश्मेः।[22]

लगभग 36 वर्ष व्यतीत हो जाने पर उक्त सूर्य मंदिर का एक भाग विनष्ट हो गया था। जिसका जीर्णोद्धार उसी पट्वाय समिति ने मालव संवत् 529 (472ई0) में किया था।[23] स्कन्दगुप्त के समय मे भी सूर्य पूजा होती थी। उसके इन्दौर ताम्रपत्र में उल्लेख है कि इन्द्रपुर (बुलन्दशहर जिला) में एक सूर्य मंदिर विद्यमान था, जिसका निर्माण क्षत्रिय अचल वर्मा तथा भृकुण्ठ सिंह ने कराया था। देवविष्णु चतुर्वेदी ने इस मंदिर मे दीपक जलाने के निमित्त दान दिया था। दान में दिया गया द्रव्य इन्दुपंर में निवास करने वाले तेलियों की समिति (तैलिक श्रेणी) के पास जमा किया गया। इस श्रेणी को दो पल तेल (तैलस्य पलद्वय) उक्त सूर्य मंदिर में दीपक प्रज्वलित करने का प्रयोजन से देना पड़ता था[24] पुनश्च छठी षताब्दी ई0 में सूर्य पूजा का बहुत प्रचार–प्रसार था और देश के विभिन्न भागों में बहुसंख्यक सूर्य मंदिर विद्यमान थे। इस काल में सौरधर्म विषयक विभिन्न पुराणों, उप पुराणों तथा अन्य ग्रंथों का प्रणयन हुआ। मग पुराहितों की परम्पराओं का राष्ट्रीयकरण हो चुका था। तथा सौरधर्म को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त हो गया।[25] उत्तरगुप्त और मौखरी वंश के शासकों में अदित्यसेन, जीवितगुप्त द्वितीय, सवितगुप्त, अवन्तिवर्मन और सर्ववर्मन सूर्यदेव के परम उपासक थे। अपने शासनकाल में उन्होंने सूर्योपासना को राजकीय संरक्षण प्रदान किया।[26] वर्धन शासकों में आदित्यवर्द्धन और राजवर्द्धन सूर्यदेव के परम उत्साही और समर्पित भक्त थे। उनके शासनकाल में सूर्य उपासना चरमोत्कर्ष पर थी।[27] हर्ष के शासनकाल में प्रयाग में धार्मिक सम्मेलन हुआ था। जिससे पहले दिन बुद्ध की मूर्ति प्रतिष्ठित की गयी तथा दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य तथा शिव की पूजा की गयी थी। इससे ज्ञात होता है कि उस काल में सूर्य पूजा का पर्याप्त महत्व था[28]। सूर्योपासना का यह चर्मोत्कर्ष हर्ष के समय तक ही सीमित नहीं रहा अपितु 11वीं शती ई0 तक इसका प्रचलन रहा। हर्ष के पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड नामक एक अन्य राजा भी सूर्य का भक्त था जिसने सूर्य के मार्तण्ड मंदिर का निर्माण करवाया था, जिसके खण्डहरों से प्रतीत होता है कि यह अपने समय में एक विशाल मंदिर रहा होगा[29]।

प्राचीन भारत में पूर्वमध्यकाल (सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी ई0 तक) सूर्योपासना (सौर संस्कृति) का सर्वाधिक समृद्ध एवं भव्यकाल माना जाता है। विवेच्यकाल में सम्पूर्ण भारत में सूर्योपासना का पर्याप्त प्रचार–प्रसार हुआ। वे इस काल में प्रमुख आराध्य देव के रूप में प्रतिष्ठित थे। इस काल में सूर्य को 'रोगों का नाशक' माना जाता था और विशेष रूप से इस देवता की पूजा रोगों से मुक्ति पाने के लिए की जाती थी। कोर्णाक मंदिर में सूर्य की मूर्ति के पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण एक अभिलेख में सूर्य को समस्त रोगों का विनाशक और विश्व का प्रकाशक कहा गया है। (सूर्यः समस्तरोगानां हर्ता विश्व प्रकाशकः।)[30] कोणार्क के इस सूर्य मंदिर का निर्माण गंगवंशी राज नरसिंहदेव (1238 से 1264 ई0) के शासनकाल में हुआ था। उसके शासन के 5वें वर्ष (सम्भवतः 1243 ई0) में मंदिर की नींव रखी गयी थी व 18वें वर्ष (सम्भवतः 1256 ई0) में यह मंदिर बनकर तैयार हुआ। माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन रविवार को कोणार्क मंदिर में प्रथम पूजन हुआ था। सम्भव है कि इससे पूर्व भी यहां सूर्य मंदिर रहा हो पर पुरातात्विक साक्ष्य के अभाव में इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहना कठिन है। प्रतिहारों और गहड़वाल वंशीय शासकों का समय सूर्य पूजा का स्वर्णिम युग था। कन्नौज के गुर्जर प्रतीहार वंशी शासक रामभद्र (833–836ई0) सूर्यदेव के परम भक्त थे। उनके अभिलेख (वाराह ग्राम स्थित) में उनको 'परमादित्य' बताया गया है। सूर्योपासक होने के कारण ही उसने अपने पुत्र का नाम 'मिहिर' रखा जो आगे चलकर महान शासक मिहिरभोज (836–885ई0) के नाम से प्रसिद्ध हुआ[31]। भोज की ग्वालियर प्रशस्ति में उल्लेख है– 'रहस्यव्रत सुप्रसन्नात् सूर्याद् अवापन्।' अर्थात् 'मिहिरभोज का जन्म रहस्यमय व्रत द्वारा सूर्य को प्रसन्न करने के अनन्तर हुआ था।' रहस्यव्रत शब्द इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि मगों के कर्मकाण्ड रहस्यमय होते थे। अतः सम्भावना यह है कि मिहिरभोज के पिता ने मगों की पद्धति से सूर्योपासना की थी और उसके बाद उत्पन्न पुत्र का नाम मिहिरभोज रखा। जोधपुर क्षेत्र के दौलतपुर स्थान से प्राप्त वि0सं0 900 (843 ई0) के लेख में मिहिरभोज का एक नाम 'प्रभास' मिलता है जो सूर्य का पर्यायवाची है। गहड़वालवंशी शासक राजा जयचन्द ने 'लोलार्क' (सूर्य) की पूजा का खर्च चलाने के प्रयोजन से कुछ ग्राम दान में दिये थे।[32] इस काल में सूर्य पूजा अनेक नामों से की जाती थी जैसे–लोलार्क, इन्द्रादित्य, चक्रस्वामी, मार्तण्ड, भास्कर और वरूण स्वामी। ये सभी नाम इस काल के अभिलेखों में सूर्यदेव के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[33] मानव रूप में सूर्य पूजा का भारत में सूत्रपात शाकद्वीप के मग ब्राह्मणों द्वारा किया गया था। इसका उल्लेख गया जिले से उपलब्ध एक अभिलेख में भी स्पष्ट रूप से मिलता

था– 'शाकद्वीपस्सदुग्धाम्बुनिधिवलयितो यत्र विप्राः मगाध्याः अर्थात् ''दुग्ध सागर से घिरा हुआ शाकद्वीप है, जहाँ मग ब्राह्मणों का निवास है''।[34] वलभी के कुछ मैत्रक शासक और बंगाल के सेनवंशीय शासक भी सूर्यदेव के परम भक्त थे।[35] राजपूताने में मग जाति के ब्राह्मण आज भी मिलते हैं जो कि प्राचीन काल के मग जाति से ही सम्बन्धित रहे होंगे। कुषाण युग में उनकी सूर्य पूजा विधि ईरान से भारत में आयी।[36]

उद्देश्य

हिन्दू समाज में धर्म एक अभिन्न तत्व है। हिन्दू समाज के समस्त क्रियाकलाप, जन्म से लेकर मृत्यु तक, धर्म से आबद्ध होते हैं। धर्म के इतर हिन्दू जन–जीवन की कल्पना अधूरी है। ऋग्वैदिक काल से लेकर आज तक हिन्दू समाज में करोड़ो देवताओं का आविर्भाव हुआ वे पूजनीय, पोषणीय रहें और वर्तमान में भी अनेक देवताओं की कल्पना करता हुआ हिन्दू समाज नये–नये देवताओं को गढ़ रहा है। इसी प्रगतिशील सोच ने अपने आदि कालीन देवी–देवताओं को प्राचीन काल की अपेक्षा निम्नतर स्थिति में पहुँचा दिया है। प्राचीन काल में शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, गणपति, आदि मानव जीवन उपास्य और नियन्ता थे। प्रस्तुत देवताओं में भी भगवान सूर्य की उपासना के प्रमाण प्रागैतिहासिक काल से ही मिलने लगते है जो कि ऋग्वैदिक काल के वैदिक देवमण्डल में प्रमुख स्थान पर स्थापित देव हो गए थे। परवर्ती कालों में भी भगवान सूर्य का स्थान सभी राजवंशों के उपास्य देवों में श्रेष्ठ ही रहा। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है कि विश्व में स्थापित एकमात्र प्रत्यक्ष देव भगवान सूर्य की व्यापकता को समझते हुए हम आज भी उन्हें अपने धर्म में सर्वश्रेष्ठ का दर्जा प्रदान करें क्योंकि आज भी उन्हीं से चर–अचर, स्थावर–जंगम सभी को प्राणदायिनी जीवनी शक्ति प्राप्त होती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत वर्ष में प्रागैतिहासिक काल से ही सूर्योपासना का व्यापक प्रचलन रहा है। प्रारम्भ में सूर्य की उपासना प्रतीक रूप में होती थी। मूर्ति के रूप में सूर्योपासना के प्रचलन का श्रेय शाकद्वीपीय मग पुरोहितों को दिया जाता है, जो सूर्य पूजा के विशेषज्ञ थे। प्रो0 कृष्णदत्त बाजपेयी के अनुसार–'' ईरान के सूर्य पूजक पुजारियों का आगमन ईसा पूर्व प्रथम शती से विशेष रूप में होने लगा। हमारे यहाँ उन्हें अच्छा सम्मान मिला। उनके प्रयास से उत्तर–पश्चिम भारत में अनेक स्थानों पर सूर्य–मन्दिरों और प्रतिमाओं का निर्माण हुआ।[37] अंततः, ज्ञान और प्रकाश को केन्द्र में रखने वाली सूर्य केन्द्रित संस्कृति भारतीय जनमानस का अमूल्य अंग है। आज भी सूर्य नमस्कार जैसे यौगिक अनुष्ठान मानव जीवन में उत्तम स्वास्थ्य के लिये अति आवश्यक हैं और अपने समग्र रूप में भगवान सूर्य सृष्टि के नियन्ता हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय, एल0 पी0– सन् वर्शिप इन ऐन्शेन्ट इण्डिया, 1971 पृ0 1
2. थपल्याल, के0 के0– सिंधु सभ्यता, पृ0 169
3. पाण्डेय, एल0पी0– उपरोक्त
4. शास्त्री, केदारनाथ–सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्रः हड़प्पा केन्द्रः पृ0 158–60
5. चतुर्वेदी,श्रीनाराण– सूर्योपासना और ग्वालियर का विवस्वान मंदिर, पृ0 18
6. बॉशम,ए0एल0– वण्डर दैट वाज़ इण्डिया,अनु0– वी0सी0 पाण्डेय पृ0–27
7. मैक्डॉनल–ए0ए0 वैदिक मैथोलॉजी,अनु0 – एन0राय0 कुमार, पृ0– 22।
8. उपरोक्त– पृ0 27–60
9. उपाध्याय, रामजी– कल्याण सूर्यांक पृ0 212
10. त्रिपाठी, रमाकान्त– कल्याण सूर्यांक पृ0 244
11. पाण्डेय, एल0पी0– उपरोक्त पृ0 10, 43
12. चतुर्वेदी, श्रीनारायण– उपरोक्त पृ0 19, 17
13. अग्रवाल,वी0एस0– मार्कण्डेय पुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन, 1961– पृ0 191
14. चतुर्वेदी, श्रीनारायण– उपरोक्त पृ0 19, 20
15. अग्रवाल, वी0एस0– भारतीय कला, 1977– पृ0 76
16. पाण्डेय, एल0पी0– उपरोक्त पृ0 57
17. उपरोक्त पृ0 58
18. पाण्डेय, एल0पी0– उपरोक्त पृ0 66
19. उपरोक्त पृ0 68
20. बाजपेयी, के0डी0– भारतीय पुरातत्व में सूर्य, कल्याण, 'सूर्यांक', पृ0 322–23
21. पाण्डेय,एल0पी0– उपरोक्त पृ0– 74
22. सरकार,डी0सी0– सेलेक्ट इंस्क्रिप्संस,भाग–1, पृ0 305 (कलकत्ता)
23. उपरोक्त, पृ0– 306
24. उपरोक्त, पृ0– 320
25. चटर्जी, गौरीशंकर–हर्षवर्द्धन,इलाहाबाद,1938, पृ0–66
26. पाण्डेय, चन्द्रदेव– ईरान और भारत की सूर्य पूजा परम्परा, इतिहास दर्पण, वा0 16 पृ0–136
27. पाण्डेय, एल0पी0– उपरोक्त पृ0– 80
28. त्रिपाठी, रमाकान्त– कल्याण सूर्याक पृ0 246
29. उपरोक्त
30. विद्यालंकार,सत्यकेतु–भारतीय इतिहास का पूर्व मध्ययुग, पृ0 216
31. पाण्डेय, एल0पी0– उपरोक्त, पृ0 80–81
32. विद्यालंकार, सत्यकेतु– उपरोक्त, पृ0 315
33. उपरोक्त, पृ0– 316
34. उपरोक्त
35. पाण्डेय, एल0पी0– उपरोक्त, पृ0 81–82
36. उपाध्याय, रामजी– उपरोक्त, पृ0 456–57
37. बाजपेयी, के0डी0– प्राचीन कला में सूर्य का अंकन, पंचाल,अंक–1, 1986, पृ082